महाबली : राजसत्ता बनाम कलाकार की स्वाधीनता का द्वंद्व

प्रदीप रंगराव जटाल
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
पार्वतीबाई चौगुले कला एवं विज्ञान महाविद्यालय (स्वायत्त)
मडगांव, गोवा
ईमेलः prjatal1982@gmail.com

सारांश

भारतीय जीवन में नाटक का लोकव्यापी महत्त्व रहा है। इसके माध्यम से हम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पर प्रकाश डालते हुए समाज की उन तमाम विसंगतियों को खोजने की कोशिश करते हैं, जो स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। महाबली नाटक राजसत्ता और कला के द्वंद्व को उद्घाटित करते हुए सोलहवीं शताब्दी में महाकवि तुलसीदास द्वारा किए गए महत् कार्य जिसमें, भाषा और रामकथा पर वर्ण विशेष के एकाधिकार को तोड़ते हुए विचार के लोकतांत्रिकरण जैसे जोखिम भरे ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी कार्य पर प्रकाश डालता है। साथ ही तुलसीदास ने मध्यकालीन मुग़ल सम्राट अकबर के दरबार की शान बढ़ाने से न केवल इन्कार किया बल्कि राजसत्ता और राजाश्रय का विरोध करते हुए कवि की सार्वकालिक महत्ता को स्थापित करने का महत् एवं साहसी कार्य किया है। इसके अलावा नाटक में सत्ता के चरित्र को उजागर करते हुए राजसत्ता की मर्यादाओं को स्पष्ट किया है और कलाकार की अमर्याद साहित्य शक्ति और उसकी कालजयिता को दर्शाने का सफ़ल प्रयास किया है।

मूल बिन्दु

राजसत्ता, कलाकार, धार्मिक एकाधिकार, विचार का लोकतंत्रिकरण, सार्वभौमिक एवं शाश्वतसत्य, सनातनी, द्वंद्व, समझौता, स्वाधीनता, समसामयिकता आदि।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 27.02.2022
Approved: 14.03.2022

प्रदीप रंगराव जटाल

महाबली : राजसत्ता बनाम कलाकार की स्वाधीनता का द्वंद्व

RJPP Oct.21-Mar.22, Vol. XX, No. I,

pp.137-141
Article No. 18

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2022-vol-xx-no-1

साहित्य का हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अनन्य साधारण महत्त्व है। साहित्य के विभिन्न रूपों में 'नाटक' साहित्य का एक श्रेष्ठ रूप है। जिसका प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक एवं प्रमाताओं से होता है। इसीलिए नाटक को साहित्य की सबसे सशक्त, प्रभावशाली और लोकप्रिय विधा के रूप में जाना जाता है। नाटक सामाजिक के मन में गहरी पैठ जमाकर अपना प्रभाव डाल रहा है। सामान्य जन से सीधी बात करने का यह सबसे कारगर तरीका है। असग़र वजाहत इसी तरह के नाटककार हैं जो आम जनता से सीधी एवं दो टूक बात करते हैं। उनके नाटक सामाजिक सरोकारों की कथावस्तु को एक ऐसा ज्वलंत और रोचक स्वरूप देते हैं जो दर्शकों को लगातार बांधे रखता है। साथ ही मानवीय समस्याएँ और मानव सम्बन्धों की गहन पड़ताल भी उनके नाटकों की विशेषता है। उन्होंने कुछ नाटक पुरानी लोक कथाओं पर लिखे हैं जिसे वर्तमान संदर्भों और परिदृश्य से भी जोड़ा है। तो कुछ नाटक समाज में फैले धार्मिक पाखंड पर सीधी चोट करते हुए धार्मिक सहिष्णुता पर बल देते हैं। समकालीन जीवन और उससे जुड़ी समस्याओं को उजागर करने का काम असग़र वजाहत के नाटक बख़ूबी करते हैं।

'महाबली' सन् 2019 में प्रकाशित असग़र वजाहत का पूर्णकालिक नाटक है। जिसमें उन्होंने भारतीय इतिहास के दो महान समकालीन पात्र सम्राट अकबर और तुलसीदास को अपनी कल्पना के केंद्र में रखकर रचना की है। इतिहास में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि अकबर और तुलसीदास की कभी भेंट हुई थी। लेकिन राजसत्ता और कला के परस्पर सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा करने के लिए नाटककार ने काल्पनिक ढंग से दोनों की भेंट कराई है। जहाँ एक ओर गोस्वामी तुलसीदास बनारस के घाट पर बैठ अपना सम्पूर्ण समय ध्यान, भक्ति और साहित्य में लगाते थे, वहीं मुग़ल सल्तनत के बादशाह सम्राट अकबर चाहते थे कि गोस्वामी तुलसीदास सीकरी आकर उनके दरबार की शोभा बढ़ायें। अकबर ठहरे महाबली जिसे चाहे आदेश दे सकते थे और उनके आदेशों का पालन करना प्रजा का कर्तव्य था। किन्तु तुलसीदास सम्राट अकबर के अनुरोध को मानने से इनकार कर देते हैं। राजसत्ता और कलाकार की स्वाधीनता का यह द्वंद्व ही इस नाटक का मुख्य विषय है। 'महाबली' सम्राट अकबर का प्रिय सम्बोधन था लेकिन जब गोस्वामी तुलसीदास अकबर का कहना मानने से इनकार करते हैं तब उनके महाबली सम्बोधन पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

'महाबली' नाटक की विषयवस्तु भले ही सोलहवी शताब्दी की क्यों न हो। किन्तु उसकी समसामयिकता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। प्रस्तुत नाटक में मुख्यतः दो विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें –मध्यकाल में धार्मिक एवं भाषिक एकाधिकार को खंडित करते हुए विचारों का लोकतंत्रिकरण जैसा जोखिम भरा काम करना और दूसरा तत्कालीन मुग़ल सम्राट अकबर की राजसत्ता के साथ एक कलाकर (तुलसीदास) का किसी प्रकार का कोई समझौता न करना।

मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा जनभाषा अवधी में 'रामचरितमानस' लिखने से पहले देवभाषा के रूप में संस्कृत और रामकथा पर एक वर्ण विशेष का एकाधिकार था। रामकथा सभी के लिए सहज एवं सुलभ नहीं थी। जिस किसी को रामकथा सुननी होती उन्हें कथावाचक ब्राह्मणों पर आश्रित रहना पड़ता था। और साधारण जन के लिए यह संभव नहीं था। गोस्वामी तुलसीदास ने मध्यकाल में वर्ण विशेष के एकाधिकार को तोड़ने का महत्तम कार्य जिस लगन और निर्भीकता के साथ किया वह एक महान क्रांति थी। आज भी ब्राह्मणेतर परिवारों में विधिवत शादी–ब्याह एवं पूजा–अर्चना हेतु ब्राह्मण को सम्मान पूर्वक बुलाया जाता है। वही मध्यकाल में तुलसीदास जैसे एक साधारण

रामभक्त कवि द्वारा तत्कालीन सनातनी प्रकांड पंडितों एवं धर्म रक्षकों के खिलाफ़ खुली चुनौती देकर रामकथा को सबके लिए सुलभ करना कितना कठिन कार्य रहा होगा। जिसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

नाटक में जहां एक ओर सम्राट अकबर और तुलसीदास की मुख्य कथा चलती हैं वही दूसरी ओर तुलसीदास और उनका तीव्र विरोध करने वाले तत्कालीन पंडितों की कथा चलती है। जिसमें घाट के मालिक– बिशन महाराज, सनातनी पंडित–आचार्य चन्द्रकान्त मिश्र, सनातनी पंडित का शिष्य– भोला पंडित, शिवभक्त–पंडित गंगाधर पांडे, और निराकार ब्रह्मवादी– पंडित त्रिभुवनदास आदि की प्रासंगिक कथाएँ चलती हैं। इन सबसे अनुमान लगाया जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास को अपने वर्ण विशेष के लोगों से ही कितना कठिन संघर्ष करना पड़ा होगा। इस संदर्भ में सनातनी पंडित चन्द्रकान्त मिश्र का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– *"संस्कृत देवभाषा है. भासा (अवधी) गली–मोहल्ले की है... नीच से नीच इसे बोलता है... उसके बीच राम को ले जाओगे... रामकथा की प्रतिष्ठा बनाये रखना हमारा धर्म है... देखो, अनादिकाल से यह परंपरा रही है कि पंडित और ज्ञानी विशेष आयोजन पर इसका पाठ करते आए हैं.* –**” विद्या पर केवल वर्ण विशेष का एकाधिकार था जिसे तुलसीदास के माध्यम से छेद देने का सफ़ल प्रयास हुआ है। इस प्रकार विचारों का लोकतंत्रिकरण और भाषा का सरलीकरण होना तत्कालीन पंडितों को मिलने वाला मुफ़्त का कलेवा छीनने जैसा था। इसी हकीकत को बयां करते हुए सनातनी पंडित का शिष्य भोला पंडित का व्यंग्य–कथन है– *"सुनो तुलसीदास... सबका विधि विधान है... भगवान श्रीरामचन्द्र जी महाराज का पाठ कराने जजमान पंडित को बुलाने आते हैं... बहुत श्रद्धा से चौकी पर श्रीराम और हनुमान जी की मूर्तियाँ स्थापित होती हैं। आम और केले के पत्ते, बतासे, फुलमालाएँ, कलश पर नारियल, कलावा, चावल, रोली, धूप, पंजीरी, मिष्ठान, फल–फूल और तुलसी के पत्ते रखे जाते हैं... पंचामृत के लिए दूध–दही–शहद आदि की व्यवस्था होती है... हवन की सामग्री और घी रखा जाता है... धूप जलाई जाती है... और उसके बाद देवभाषा में रामायण का पाठ होगा... सब भूल गये... गुरु दक्षिणा के रूप में मुद्राएँ और वस्त्र मिले होंगे... रामकथा देव भाषा में है... देव भाषा पर हमारा अधिकार है... पीढ़ी–दर–पीढ़ी से यह अधिकार हमें मिलता आ रहा है... देवभाषा में ज्ञान है... ज्ञान हमारे पास है..."*[2] इस प्रकार भोला पंडित के कथन से यह स्पष्ट होता है कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी के अधिकार पंडितों से छीने जा रहे थे और मुफ़्त की दुकान बंद होने के भय से वे तिलमिला गए और तुलसीदास को काशी से भगाने की हर मुमकिन कोशिश करने लगे। आज भी देश के सुदूर ग्रामांचलों में कमोबेश मात्रा में यही स्थिति है। भारतीय मान्यता के अनुसार बालक के जन्म से उसकी जन्मपत्री बनाने से लेकर मृत्युपरांत वर्ष श्राद्ध तक इन पंडितों से पीछा नहीं छूटता। आज भी पाप–पुण्य का भय दिखाकर साधारण जनता पर होम–हवन, पूजा–पाठ को बड़ी आसानी से थोपा जाता है।

नाटक के माध्यम से यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि जब–जब कोई क्रांतिकारी मसीहा पैदा हुआ है उसे समूल नष्ट करने का हर मुमकिन प्रयास हुआ है। तुलसीदास के साथ भी यही होता है। जब काशी में तुलसीदास की ख्याति बढ़कर लोकमानस में उनकी गहरी पैठ बनने लगती है तब गुंडो द्वारा उनपर जानलेवा हमला किया जाता है। उसके बाद भी कोई अन्य विकल्प न रहने से अंततः उनके चरित्र पर शक किया जाता है। तुलसीदास के विरोधियों से बसंती नामक स्त्री को साधन बनाकर तुलसीदास जैसे संत को बदनाम करके काशी से भगाने का प्रयास किया जाता है। अमृतलाल नागर का उपन्यास 'मानस का हंस' में भी इसी तरह धर्मांध विरोधियों द्वारा तुलसीदास

का मोहिनीबाई नामक स्त्री से संबंध जोडकर उन्हें बदनाम करने की कोशिश की गई है। अर्थात जब–जब किसी सज्जन या विद्वान को सहजता से पराजित नहीं किया जाता तब उसके चरित्र पर आघात कर उसे तोड़ने की पूरी कोशिश की जाती है। और यह प्रवृत्ति किसी भी स्वस्थ समाज के लिए हानिकारक है।

नाटक में दूसरी ओर राजसत्ता और कलाकार की स्वाधीनता का द्वंद्व है। मुग़ल सम्राट अकबर ने विधवत शिक्षा न लेने के कारण उसे अपने दरबार में अलग–अलग प्रतिभाओं को जमा करने का शौक था। वह आज भी अपने नौ रत्नों के लिए जाना जाता है। और उन्हीं के बल पर वह अपने आप को महाबली समझता था। इसीलिए वह राजा टोडरमल और अब्दुल रहीम के माध्यम से तुलसीदास जैसे महाकवि को अपने दरबार में शामिल करना चाहता था, किन्तु तुलसीदास महाबली के अनुरोध को अस्वीकार करते है। यह वह समय था जब अच्छे–अच्छे कवि राजाश्रय के लिए ललचाते थे वही तुलसीदास ने राजसत्ता का बड़ी विनम्रता से विरोध किया। कुंभन्दास ने भी सीकरी जाने से इसी तरह विरोध दर्शाया था। तुलसीदास राजा टोडरमल से कुंभन्दास का पद सुनाकर सीकरी न जाने की बात कहते हैं। यथा–

"भक्तन को कहा सीकरी सो काम ।।
आवत जावत पन्हैया टूटी बिसरी गए परनाम ।।
जाको मुख देखे अघ लागै करन परी परनाम ।।
कुंभन्दास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम ।।'[3]

यहाँ तुलसीदास के सीकरी न जाने की बात के ऐतिहासिक तथ्य को भले ही काल्पनिक विस्तार दिया हो। लेकिन हकीकत तो यही है कि सत्ता और कला का संबंध एवं संघर्ष सार्वभौमिक और शाश्वत हैं। संसार के अन्य संस्कृतियों में भी ऐसे कवि लेखक रहें हैं जिन्होंने राजसत्ता का त्याग करते हुए संरक्षण लेने से इनकार कर दिया। कवि और कलाकार सच बोलने का आदि होता है और राजसत्ता सच सुनना नहीं चाहती। इसी द्वंद्व को तुलसीदास और सम्राट अकबर के संवादों से अभिव्यक्त किया है। जब अकबर तुलसीदास से सीकरी न आने का सच जानना चाहते है। तब तुलसीदास कहते हैं– *"सम्राट और सत्य?"*[4] कहने का तात्पर्य है सत्ता कभी सच नहीं सुनतीं। इस पर सम्राट अकबर स्वयं जवाब देता हुआ कहता है– *"तुम ठीक कह रहे हो गोस्वामी... हुकूमतें सच नहीं सुनतीं... न सच बोलती है... न सच देखती हैं।"*[5] सत्ता चाहे किसी की भी हो सत्ता का चरित्र एक सा होता है। और इसी कारण निर्भीक एवं बेबाक कवि कलाकार सत्ता का पुरजोर विरोध करता है। किन्तु समय के साथ–साथ सत्ता अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए कवि एवं कलाकारों की आवाज दबाने का प्रयास कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से हम देख रहे हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर पहरे से लगे हैं।

नाटक का शीर्षक 'महाबली' सम्राट अकबर का प्रिय सम्बोधन है। इसी आधारपर यह शीर्षक रखा गया है। सम्राट अकबर जिसे चाहे आदेश था सकता था जिसे चाहे गुलाम बना सकता था। और उसने देशभर की प्रतिभाओं को अपने दरबार में बुलाकर उन पर एक प्रकार की जीत हासिल की थी। केवल महाकवि तुलसीदास ही उसके अनुरोध को मानने से इनकार करते हैं। यही बात अकबर को अस्वस्थ कर देती है और वह स्वयं तुलसीदास से बनारस घाट पर मिलने जाता है। तुलसीदास को सीकरी बुलाने की वजह बताता है। यथा – *"जिस तरह एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं और*

एक मुल्क में दो बादशाह नहीं रह सकते उसी तरह एक मुल्क में दो महाबली भी नहीं हो सकते... जब हमें कहीं से यह इत्तिला मिलती है कि कोई और भी... तो हम उसे तोड़ते नहीं जोड़ लेते हैं. कुछ लोग ऐसे होते हैं. जिन पर फ़तेह हासिल करना... बड़ी–से–बड़ी फ़ौज को हराने से मुश्किल होता है. हमारी नज़र में गोस्वामी तुम...[6] इस प्रकार राजसत्ता अपने बराबरी का किसी को होने नहीं देती। उसे या तो अपने साथ शामिल करते हैं या फिर हमेशा के लिए ख़त्म कर देते हैं। असग़र वजाहत का 'इन्ना की आवाज' नाटक भी इसी तरह का है। जब महल के दरवाज़े पर सुल्तान का नाम मिटकर अपने आप गुलाम मज़दूर इन्ना का नाम उभरकर आता है तो सुल्तान से इन्ना का मसीहा वाला रूप देखा नहीं जाता। उसे षड्यंत्र में फंसाकर सत्ता में शामिल कर वज़ीरे आज़म बनाया जाता है। और उसकी आवाज को हमेशा के लिए छीन लिया जाता है। सत्ता के इसी चरित्र को उजागर करने की सफ़ल कोशिश यह 'महाबली' नाटक है।

नाटक के अंत में अपने आपको महाबली समझनेवाले अकबर के 'महाबली' सम्बोधन पर तुलसीदास प्रश्न उठाते हुए कहते हैं, *"क्षमा करे महाराज... आप महाबली नहीं है... सीकरी को प्रतिभाओं से सजाते हैं... और तब आप महाबली कहलाते हैं..."*[7] तुलसीदास द्वारा कही इस कड़वी सच्चाई से अकबर ख़ामोश होकर निराश और हताश होता है। जैसे उसके चेहरे से किसी ने नकाब उतार दिया हो। यही वजह है कि कभी हुकूमतें सच सुनना नहीं चाहती। अंत में तुलसीदास सम्राट अकबर और स्वयं में तुलना करते हुए एक सम्राट की मर्यादाओं को दर्शाते हुए कहते हैं, *"आपका नाम इतिहास में हमेशा के लिए दर्ज़ हो जायेगा। आप इतिहास में अमर हो जायेंगे महाबली।... हम इतिहास में नहीं रहेंगे महाबली वर्तमान में रहेंगे महाबली वर्तमान में... सदा वर्तमान में"*[8] यहाँ तुलसीदास ने एक सम्राट और कवि के बीच तुलना करते हुए यह बताने की कोशिश की है कि बड़े से बड़े सम्राट इतिहास में गुम हुए लेकिन कवि और लेखक कभी इतिहास नहीं बनता बल्कि नित नया इतिहास निर्माण करता है। इसीलिए कवि और उसका साहित्य हमेशा कालजयी रहता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'महाबली' नाटक में असग़र वजाहत ने भले ही राजसत्ता और कलाकार के द्वंद्व को मुख्य विषय के रुप में बड़ी कुशलता से दिखाया है। किन्तु उसके साथ ही मध्यकालीन वर्ण–व्यवस्था और सनातनी कट्टर विचारों से उत्पन्न सामाजिक अवरोधों को दिखाने का नाटककार का प्रयास सराहनीय है। वर्तमान में भी उसकी समसामयिकता हमारे लिए उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी मध्यकाल में थी।

संदर्भ

1. असगर वजाहत, महाबली. राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेटः दिल्ली. **पृष्ठ 22–23.**
2. वही. पृष्ठ. **23–24.**
3. वही. पृष्ठ. **78.**
4. वही. पृष्ठ. **83.**
5. वही. पृष्ठ. **83.**
6. वही. पृष्ठ. **90.**
7. वही. पृष्ठ. **93.**
8. वही. पृष्ठ. **95–96.**